International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 130-133

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 130-133
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-08-2020
Accepted: 28-09-2020

नवनीत सिहं
1. शोधछात्र संस्कृत विभाग राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
2. महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

CorrespondingAuthor:
नवनीत सिहं
1. शोधछात्र संस्कृत विभाग राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
2. महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य में प्रकृति वर्णन

नवनीत सिहं

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य का प्रारंभ वेदों से माना जाता है और वेद अपौरूषेय है। अर्थात् वेदों में जो लिखा है वह सत्य है वेदों में सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद है। संपूर्ण संस्कृत साहित्य में वेदों की परम्पराओं का ही अनुसरण किया गया है। वेदों की उपजीव्यता की यह संस्कृति संपूर्ण संस्कृत साहित्य में दिखाई देती है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का एक विशेष स्थान है। इसी कारण वेदों में भी जो प्रकृति के अंग है जैसे – वायु, आकाश, जल आदि को देवता के रूप में दर्शाया गया है। इस प्रकृति चित्रण की परम्परा वेदों से प्रारंभ होकर आधुनिक साहित्य तक लगातार चल रही है। आचार्य विश्वनाथ ने अपनी रचना 'साहित्य दर्पण ' के 'षष्ठ परिच्छेद' में महाकाव्य के लक्षण में कहा है कि संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया (शिकार), पर्वत, षड् ऋतु, वन, समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवश्य रूप में होना चाहिए।

संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।। [1]

महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य में 19 सर्गों में कुल 1569 श्लोक है। इसमें महाकवि ने 31 सूर्यवंशी राजाओं का सुंदर वर्णन किया है। रघुवंश महाकाव्य की कथा राजा दिलीप से प्रारंभ होकर राजा अग्निवर्ण तक वर्णित है। महाकवि कालिदास ने अनेक श्लोंकों में प्रकृति का मधुर और सुंदर चित्रण किया गया है। जगह – जगह पर महाकवि कालिदास ने अपने प्रकृति प्रेम का परिचय दिया है। महाकवि कालिदास प्रकृति के महान उपासक है। वे प्रकृति के अनन्य प्रेमी है। महाकवि कालिदास को प्रकृति सुकुमार रूप अत्यंत प्रिय है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में प्रकृति का चित्रण बहुत ही सुंदर और मनोरम किया है जिसका वर्णन इस प्रकार है–

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी।
तमातपल्कान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे।। [2]

अर्थात् पर्वतीय झरनों के जल कणों से युक्त अत एव शीतल तथा वृक्षों धीरे – धीरे हिलते हुए फूलों की गंधमाला अर्थात् शीतल, मंद एवं सुगंध युक्त वायु छत्ररहित अत एव धूप से मुरझाए हुए एवं सदाचार से पवित्र राजा दिलीप की सेवा करने लगा।

महाकवि कालिदास उपमा सम्राट कहे जाते है इन्होंने चतुर्थ सर्ग में सूर्यास्त की सुंदर उपमा दी है।

स राज्यं गुरूणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः।। [3]

अर्थात् राजा रघु अपने पिता द्वारा दिये गए राज्य को प्राप्त करके उसी प्रकार अधिक सुंदर सुशोभित हो रहे है जिस प्रकार सायंकाल के समय सूर्य द्वारा निहित तेज को पाकर अग्नि की शोभा अधिक हो जाती है।

महाकवि कालिदास ने चतुर्थ सर्ग में भी प्रकृति का सुंदर वर्णन करते हुए कहा है कि शरद ऋतु में हंस की पंक्तियों में कुमुद

नामक श्वेत कमलों से युक्त सरोवरों से ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों रघु के यश की समृद्वि फैली हुई है।

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव।। [4]

प्रकृति सम्राट महाकवि कालिदास प्रातःकाल तथा पवन का सुंदर वर्णन करते हुए कहते है कि प्रातःकाल की पवन वृक्षों के ढीले पुष्पों को गिरा रहा है और सूर्य की किरणों से खिले हुए कमलों को छूता हुआ चल रहा है। मानों तुम्हें सोया हुआ देखकर वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सुगंधि को दूसरों से प्राप्त करने की इच्छा कर रहा है।

वृन्ताच्छलथं हरति पुष्पमनोकहानां
संसृज्यते सरसिजैररूणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः
सौरम्यमीप्सुरिव ते मुखमारूतस्य।। [5]

महाकवि कालिदास पंचम सर्ग में ओस की बूदों तथा वृक्ष के पत्तों का वर्णन करते हुए कहते है कि लाल वर्ण के वृक्षों के पत्तों पर पड़ी हुई, हार के स्वच्छ मोतियों के समान निर्मल ओस की बूंदें, लाल – लाल ओठों पर वर्तमान, दातों की चमक सहित तुम्हारे मुस्कुराने की तरह सुंदर लग रही है।

ताम्रोदरेषु पतितं तरूपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्वपरभागतयाधरोष्ठे
ल लास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्।। [6]

इसी प्रकार से रानी इन्दुमति के स्वंयवर के समय वर्षा ऋतु का और गोवर्धन पर्वत तथा मयूर के नृत्य का सुंदर वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास कहते है कि वर्षा ऋतु में गोवर्धन पर्वत की सुहावनी गुफाओं में जल की फुहारों से भीगी हुई शिलाजीत की गंध वाली पत्थर की चट्टानों पर बैठकर मयूरों के नृत्य को तुम देखो।

अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु।। [7]

रानी इन्दुमती के स्वयंवर के समय उनकी सखी मलयगिरि पर्वत का सुंदर वर्णन करते हुए कहती है कि सुपारी के वृक्ष पान की बेलों से ढके हुए है। जिनमें और जहां इलायची की लताओं से चंदन के पेड़ लिपटे हुए है तथा जिनमें ताड़ के पत्ते ही चांदनी के रूप में बिछे है, ऐसी मलयगिरि की घाटियों में सर्वदा विहार करने के लिए तुम प्रसन्न हो जाओ। अर्थात यदि ऐसी मलय भूमि में सदा विहार करने की इच्छा हो तो इनसे विवाह कर लो।

ताम्बूलवल्लीपरिणद्वपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तु प्रसीद शाश्वन्मलयस्थलीषु।।[8]

महाकवि कालिदास ने नवें सर्ग में बसंत ऋतु के आगमन का सुंदर वर्णन किया है। पहले फूल खिले उसके बाद नई – नई कोपलें निकली, इन दोनों के पश्चात् भौरें और कोयलों का शब्द होने लगा, इस प्रकार क्रम से वृक्षों वाली वनस्थली में उतरकर बसंत प्रकट हुआ। किसी वृक्ष में प्रथम पत्ते आते है और किसी में पुष्प आते है, अतः क्रम में कोई भी दोष नहीं है।

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षटपदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।। [9]

बसंत ऋतु के आगमन हो जाने पर प्रकृति में जो सुंदर वर्णन होते है उनका वर्णन करते हुए प्रकृति सम्राट महाकवि कालिदास कहते है कि शिशिर ऋतु के बीत जाने पर बसंत की लक्ष्मी से पलाश में रखा हुआ कलियों का समूह ऐसा सुशोभित हुआ जैसे की मद्य पीने से लज्जा को त्याग करने वाली कामिनी से अपने प्रियतम में दिया हुआ नखक्षतरूपी भूषण हो। अर्थात् बसंत के आने पर पलाश में कलियां खूब आ गयी और वे कलियां कामिनी के नखक्षत सी (प्रिय के शरीर पर) लग रही थी।

उपहितं शिशिरापगमाश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया सदयापितलज्जया।। [10]

महाकवि कालिदास बसंत ऋतु में भ्रमरों के गुंजन तथा खिले हुए पुष्पों और लताओं का सुंदर वर्णन किया है। कानों को मधुर लगने वाले भौरों के गुंजार रूपी गीत वाली तथा पुष्प रूपी कोमल दातों की कांति वाली (खिले फूलों से मानों मुसकुरा रही है) वनप्रान्त की खिली लताएं वायु से हिलाए गए नव पल्लवों से ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसे कि अभिनय प्रदर्शन करते हुए हाथों से नर्तकी सुंदर लगती है।

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरूचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।। [11]

जब बसंत ऋतु का आरम्भ होता है तब रात्रि छोटी होने लगती है इसका सुंदर वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास कहते है कि बसंत ऋतु के आगमन से ह्रास होती हुई तथा चंद्रोदय से पीले मुख (सायंकाल प्रदोष) वाली रात्रि रूपी स्त्री उसी प्रकार छोटी हो गयी जैसे कि अपने प्रिय के समागम से प्राप्त होने वाले सुख को न पाने वाली वनिता कृशता को प्राप्त हो जाती है। अर्थात् बसंत के आगमन से रात छोटी उसी प्रकार होने लगी जैसे कि खण्डिता नायिका प्रिय समागम न होने से सूख जाती है।

उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृति वनितयानितया रजनीवधूः।। [12]

महाकवि कालिदास को उपमा सम्राट कहा जाता है क्योंकि उन्होनें इस संसार के प्रत्येक भाग से सुंदर – सुंदर उपमाओं का प्रयोग किया है महाकवि कालिदास अपनी रचनाओं में उपमा देते हुए प्रकृति का अद्भुत वर्णन करते हुए कहते है कि काजल की बिन्दुओं के समान सुंदर तथा फूलों के समूह पर बैठे हुए भौरों से सुशोभित तिलक श्रीमान् नामक वृक्ष ने, वन की भूमि को, मिश्रित रूप से उसी प्रकार सुशोभित नहीं किया जैसे कि '' श्रृंगार के लिए मस्तक पर लगाया हुआ '' तिलक स्त्री को सुशोभित करता है। अर्थात् तिलक से जैसे स्त्री सुंदर लगती है वैसे ही तिलक फूल पर बैठे भौरों से वनस्थली सुंदर लग रही है।

अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिरङ्कितः।।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमादामिव।। [13]

महाकवि वर्षा ऋतु में सूर्य के दक्षिणायन होने का सुंदर वर्णन करते हुए कहते है कि अतिथियों का सत्कार करने वाले ऋषियों के आश्रमों में ठहरते हुए पुरूषोत्तम रामचंद्र जी उसी प्रकार दक्षिण दिशा की ओर चले गए जैसे वर्षा ऋतु के नक्षत्रों में ठहरता हुआ सूर्य दक्षिण में घूम जाता है। अर्थात् दक्षिणायन में हो जाता है।

प्रययावातिथेयेषु वसन्नृषिकुलेषु सः।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः।। [14]

प्रकृति सम्राट महाकवि कालिदास से प्रकृति का कोई भी अंग अछूता नहीं रहा है ये चंद्रग्रहण की उपमा देते हुए कहते है कि सायंकाल के बादलों के समान भूरें रंग वाला विराधनाम का राक्षस वैसे ही पुरूषोत्तम राम के मार्ग को रोककर खड़ा हो गया जैसे राहु चन्द्रमा के मार्ग को रोक लेता है अर्थात् चंद्रग्रहण के समय।

संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः।। [15]

महाकवि कालिदास तेरहवें सर्ग में भीगी हुई मिट्टी की सुगंध तथा खिले हुए पुष्पों और मयूर के बोलने का वर्णन करते हुए कहते है कि जिस माल्यवान् की चोटी पर वर्षा की धारा से प्रहत अर्थात भीगी तलैयों की गन्ध और अधखिले कदम के पुष्प तथा मधुर प्यारी मयूरों की वाणी, ये सब हे प्रिये ! तुम्हारे बिना मुझे असह्य हो गये थे।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्वतकेसरं च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे।। [16]

तेरहवें सर्ग में महाकवि कालिदास ने माता सीता के वियोग में पुरूषोत्तम राम की व्यथा का सुंदर वर्णन किया है और उसकी उपमा वर्षा ऋतु से देते हुए कहते है कि मूसलाधार वर्षा से भीगी हुई, पृथ्वी से निकले भाप के संयोग से, भूमिकदली की खिली कलियों से अनुकरण की गई (ऐसी) विवाह के समय हवन का धुआं लगने से लाल– लाल तुम्हारे नेत्रों की शोभा ने मुझे बड़ी पीड़ा दी थी। अर्थात् पृथ्वी की भाप से खिले भूमिकदली के कुछ – कुछ लाल फूलों को देखकर विवाह के समय धुएं से लाल तुम्हारी आखों की शोभा मुझे स्मरण हो आई थी, तब मुझे इसी शिखर पर बड़ा दुःख था।

आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारूणलोचनश्रीः।। [17]

महाकवि कालिदास सोलहवें सर्ग में जब राजा कुश अयोध्या को पुनः राजधानी बनाने की लालसा से जाते है तो उस समय के उद्गार व्यक्त करते हुए कहते है कि ग्रीष्म ऋतु के कारण प्रतिदिन काई लगे सीढ़ियों के डण्डों को छोड़ता हुआ (कम होता हुआ) और इसीलिए कमल की नाल जिसमें ऊपर निकल आई है (जल सूखने से) ऐसा, घर की वावलियों का जल, स्त्रियों की कमर तक ही (गहरा) रह गया। अर्थात् वावलियों का जल स्त्रियों के विहार के लायक हो गया, गहरा नहीं रहा।

दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुच्चदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसं बभूव।। [18]

उपमा सम्राट महाकवि कालिदास संध्याकालीन प्रकृति के दृश्यों को स्मरण करते हुए भ्रमर और पुष्प का वर्णन करते हुए कहते है कि वनों में सायंकाल में खिलने से खूब तेज सुगन्धि वाली चमेली की कलियों में गुन्जन करता हुआ, भौंरा हर एक कली पर पैर रखकर मानों कलियों की गिनती करने लगा।

वनेषु सायंतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्वन्धिषु कुड्मलेषु।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार।। [19]

रघुवंश महाकाव्य के सोलहवें सर्ग में ग्रीष्म ऋतु की सुषमा का सुंदर वर्णन है। मनोहर गंध वाले आम के कोंपल या बौर तथा अच्छी सुवासित ईख के रस की मदिरा, और नये पाटल के पुष्प (लाल लोध्र के फूल) इन सबकों एक साथ लाकर ग्रीष्म ऋतु में कामी पुरूषों के सब कष्ट दूर कर दिये।

मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणसीधुं नवपाटलं च।
संबधता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाधावधिना प्रभृष्टाः।। [20]

राजा कुश अयोध्या पहुंचने पर अपनी स्त्रियों के साथ सरयू नदी में स्नान करते है। तब सरयू नदी के सौंदर्य का वर्णन करते हुए महाकवि कहते है कि इसके पश्चात एक दिन राजा कुश की अपनी स्त्रियों के साथ सरयू के उस जल में विहार करने की इच्छा हुई, जिसमें लहरों पर चंचल तथा मतवाले बने राजहंस है और जो तट पर खड़ी लताओं के फूलों को बहा रहा है और गर्मी में सुखप्रद है।

अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सयय्वाः।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव।। [21]

सरयू नदी के तट पर मयूर तथा उनकी सुंदर वाणी का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास कहते है कि देखो ! ऊपर को पूंछ उठाए, मधुर वाणी वाले तथा सरयू के तट की जमीन में खड़े इन मोरों से अभिनंदन किया गया और गाने के समान कर्णप्रिय, जल रूपी मृदंग की ध्वनि कानों में भर रही है। अर्थात् गीत गाकर मृदंग बजाने के समान जो ये सुंदरियां धपकी देकर जल ठोक रही है, उसे सुनकर मोर प्रसन्न होकर बोलकर इनका अभिनंदन कर रहे है।

तीरस्थलीबर्हिमिरूत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम्।
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम्।। [22]

महाकवि कालिदास ने सरयू नदी में राजा कुश और उनकी रानियों के स्नान करने का सुंदर वर्णन किया है वे कहते है कि बड़ी – बड़ी आंखों वाली उन रानियों ने केसर, कुमकुम आदि मिले जल से (पिचकारियों से) राजा कुश को भिगों दिया। भीगें हुए रंग बिरंगे महाराज कुश उसी प्रकार अत्यधिक सुंदर लग रहे थे जैसे कि सोने के शिखरों से गिरते हुए अनेक रंग के जल से गेरू आदि द्रव्यों से युक्त पर्वत राज हिमालय हो। अर्थात् जिसके ऊंचे –ऊंचे गेरू आदि के झरने बहते हो ऐसे हिमालय के समान सुशोभित हो रहे थे।

वर्णोदकैः काञ्चन श्रृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन्।
तथागतः सोऽतिततरां बभासे सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः।। [23]

महाकवि कालिदास ने राजा कुश की मृत्यु हो जाने पर रानी कुमुद्वती के उनके साथ ही सती हो जाने की उपमा चंद्रमा और चांदनी से देते हुए कहा है कि नागराज की बहन कुमुद्वती पृथ्वी को आनंद देने वाले राजा कुश के साथ उसी प्रकार सती हो गई जिस प्रकार सफेद कमलों को खिलाने वाले चंद्रमा के अस्त हो जाने के साथ ही उसकी चांदनी भी अस्त हो जाती है।

तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती।
अन्वगात्कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी।। [24]

प्रकृति सम्राट महाकवि कालिदास ने राजा अतिथि की तुलना चंद्रमा और सागर से करते हुए कहा है कि पूर्ण होने पर चंद्रमा घटने लगता है और समुद्र भी उसी प्रकार बढ़कर घटता है। किंतु यह राजा अतिथि, चंद्रमा और सागर के समान बढ़ने वाला तो है लेकिन शशी और सागर के समान घटता नहीं था। क्षयवान नहीं होता था।

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः।
स तु तत्समवृद्विश्च न चाभूत्ताविव क्षयी।। [25]

राजा ध्रुव संधि की मृत्यु के बाद मंत्रीमंडल ने सर्व सम्मति से उसके पुत्र सुदर्शन को राजा बना दिया। सुदर्शन की तुलना प्रकृति के अंग चंद्रमा से बड़े सुंदर ढ़ंग से करते हुए महाकवि कालिदास कहते है कि बालक राजा वाला वह प्रसिद्व राजा रघु का कुल, उस आकाश के समान था जिसमें नया एक कला का चंद्रमा है। तथा उस वन के समान था जिसमें एक बच्चा ही सिंह है और उस जल (तालाब) के समान सुंदर था जिसमें कमल की कलियां निकली है। अर्थात् जैसे ये सब बढ़ने वाले शौर्य संपन्न तथा सुश्री वाले होते है। वैसे ही यह बालक राजा वर्धिष्णु, शूरवीर और श्रीमान् होगा।

नवेन्दुना तन्नमसोपमेयं शावैकसिंहेन च काननेन।
रघोः कुलं कुड्मलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढ़नरेन्द्रमासीत्।।[26]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि प्रकृति सम्राट महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में सूर्य के उदय होते समय उसकी लालिमा का, कहीं हिमालय पर्वत का,कहीं बादलों का, कहीं वृक्षों का, कहीं लताओं का, कहीं फूलों का, कहीं नदियों का, कहीं खेतों और खलिहानों का, कहीं वनों और वनस्पतियों का, नृत्य करते मयूरों का, आकाश में उड़ते हुए हंसों एवं वक की पंक्तियों आदि का ऐसा सजीव वर्णन किया है मानो स्वयं प्रकृति ही सामने दृष्टिगोचर हो रही हो।

संस्कृत साहित्य ही नहीं अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य में प्रकृति चित्रण की विशेष परम्परा रही है। प्रकृति और मानव का संबंध उतना ही पुराना है जितना की सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास। प्रकृति की गोद में ही प्रथम मानव शिशु ने आखें खोली थी और उसी की गोद में खेलकर बड़ा हुआ है। इसीलिए मानव और प्रकृति के इस अटूट संबंध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। अतः उस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्ब होना स्वाभाविक है। प्रकृति मानव की चिरसंगिनी रही है। अपने दैनिक जीवन के कृत्यों से जब मानव का मन ऊब जाता है तब मानव प्रकृति का आश्रय लेता है। प्रकृति अपने आप में सुंदर है और मानव स्वभाव से ही सौंदर्य प्रेमी माना गया है। इसी कारण प्रकृति और मानव का संबंध उतना ही पुराना है जितना कि इस सृष्टि के आरंभ का इतिहास पुराना है। सांख्य दर्शन तो मानव सृष्टि की उत्पत्ति ही प्रकृति से मानता है अन्य दर्शन पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश नामक जिन पांच तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति और विकास मानते है वे भी तो मूल रूप से प्रकृति के ही अंग है।

धरती पर जीवन जीने के लिए भगवान से हमें बहुमूल्य और कीमती उपहार के रूप में प्रकृति मिली है। दैनिक जीवन के लिए उपलब्ध सभी संसाधनों के द्वारा प्रकृति हमारा एक मां की तरह पालन पोषण करती है, और जो चीजें बहुमूल्य होती है वहीं हमें प्रकृति निःशुल्क प्रदान करती है। प्रकृति हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण और अविभाज्य अंग है।

संदर्भ

1. साहित्य दर्पण (6/322)
2. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 2/13
3. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 4/1
4. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 4/19
5. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 5/69
6. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 5/70
7. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 6/51
8. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 6/64
9. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 9/26
10. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 9/31
11. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 9/35
12. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 9/38
13. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 9/41
14. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 12/25
15. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 12/28
16. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 13/27
17. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 13/29
18. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 16/46
19. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 16/47
20. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 16/52
21. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 16/54
22. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 16/64
23. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 16/70
24. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 17/06
25. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 17/71
26. रघुवंश महाकाव्य (मोतीलाल बनारसी दास), 18/37